ओ३म्

'महर्षि दयानन्द और उनके सत्य व सर्वहितकारी मन्तव्य'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द संसार में सम्भवतः ऐसे पहले धार्मिक महापुरूष हुए हैं जिन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रचार करने के साथ अपने मन्तव्यों तथा अमन्तव्यों का भी सार्वजनिक रूप से पुस्तक लिखकर प्रचार किया है। धार्मिक महापुरूष प्रायः अपनी मान्यताओं के विस्तृत व्याख्यात्मक ग्रन्थ लिख दिया करते हैं। उन्हीं ग्रन्थों को उनके शिष्य व अनुयायी उनके मन्तव्य व अमन्तव्य मानते हैं। महर्षि दयानन्द ने प्रभूत साहित्य वा ग्रन्थों की रचना की। यदि पृष्ठ संख्या की दृष्टि से देखा जाये तो वह कई हजार पृष्ठों की सामग्री है। इस पर भी उन्होंने अपने शिष्यों, अनुयायियों व आलोचकों के लिए स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश नाम से एक लघु ग्रन्थ का प्रणयन किया। हम यह अनुभव कर रहे हैं कि पाठकों को उनके मन्तव्यों का जानना उपयोगी है, अतः उनके कुछ मन्तव्यों को इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं। हम निवेदन करेंगे कि उनके मन्तव्यों व अमन्तव्यों को विस्तार से जानने के लिए पाठक उनकी लघु पुस्तिका **''स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश''** का अध्ययन कर लाभ उठाये।

अपने मन्तव्यों के आरम्भ में उन्होंने लिखा है कि सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वजनिक धर्म, जिसको सदा से (सृष्टि के आरम्भ से) सब लोग मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी, इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्तजन अथवा किसी मत (पन्थ व सम्प्रदाय) वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें वा मानें, उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी, पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्त्व्य और जिसको नहीं मानते, वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा ऋषि से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं, **जिनको कि मैं भी मानता हूं,** (उन स्वमन्तव्यामन्तव्यों को) सब सज्जन महाशयों के सामने (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश लघु पुस्तिका के माध्यम से) प्रकाशित करता हूं। **मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य हैं। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने को लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है, उसको मानना, मनवाना, और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो–जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं, क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः (अर्थात् विरूद्ध) है।**

महर्षि दयानन्द मनुष्य व उसके गुण, कर्म व स्वभाव विषयक अपने स्वमन्तव्य का पुस्तक के आरम्भ में उल्लेख कर कहते हैं कि **''मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं, की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारूण दुःख हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न हो।''** मनुष्य व उसके गुण–कर्म–स्वभाव की यह परिभाषा सर्वोत्तम एवं विश्व साहित्य में बेजोड़ और दुर्लभ है। इन शब्दों व परिभाषा से महर्षि के ऋषित्व का बोध होता है। वह अद्वितीय ऐतिहासिक महापुरूष थे। महर्षि दयानन्द ने अपने इन विचारों के समर्थन में भृतहरि, महाभारत, मनु व उपनिषद के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। भतृहरि जी का उन्होंने यह

प्रमाण प्रस्तुत किया है जो उन्हें अति प्रिय था–**'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव ही मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा।।'** इन पंक्तियों में कहा गया है कि **'चाहे कोई निन्दा करे या स्तुति करे, लक्ष्मी आये व जाये, मृत्यु चाहे आज हो या युग–युगान्तरों के बाद, धीर व विवेकी पुरूष इनकी चिन्ता न कर हमेशा न्याय पथ का ही आश्रय लेते हैं।'**

महर्षि दयानन्द ने अपना पहला मन्तव्य ईश्वर के सम्बन्ध में लिखा है। वह लिखते हैं कि **'ईश्वर कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम है, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य–न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।' दूसरा मन्तव्यः चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं, कि जिनका प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं, और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और 1127 (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, उन को परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेदविरूद्ध वचन हैं, उनका अप्रमाण मानता हूं।'** महर्षि दयानन्द के यह विचार आर्यसमाज के लिए तो आदर्श हैं ही, हमारे सनातन घर्मी बन्धुओं के लिए भी आदर्श हैं क्योंकि वह भी वेदों को ईश्वरीय वा अपोरूषेय ज्ञान मानते हैं। इसी मान्यता का प्रचार व प्रसार करने के लिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। विश्व यदि इस मान्यता को मान ले तो सारे विश्व का कल्याण होकर सर्वत्र सुख व शान्ति की स्थापना हो सकती है। वेदों के विषय में महर्षि दयानन्द की मान्यता सत्य होते हुए भी लोग इसको अपना नहीं रहे हैं, **इसे हम विश्व का सबसे बड़ा आश्चर्य मानते हैं।**

तीसरा मन्तव्यः धर्माधर्म अर्थात धर्म व अधर्म, जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरूद्ध है, उसको 'धर्म' और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरूद्ध है, उसको 'अधर्म' कहते हैं। **चौथा मन्तव्यः ''जीव''** जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अप्लज्ञ, नित्य है उसी को 'जीव' मानता हूं। **पांचवा मन्तव्यः** जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य–व्यापक, उपास्य–उपासक और पिता–पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूं। **छठां मन्तव्यः अनादि पदार्थ तीन हैं।** एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण, कर्म व स्वभाव भी नित्य (अनादि) हैं। **सातंवा मन्तव्यः प्रवाह से अनादि** जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते, परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य उन में अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूं। **आठवां मन्तव्यः 'सृष्टि'** उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप (सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, आकाश आदि) बनना। **नौवां मन्तव्यः 'सृष्टि का प्रयोजन'** यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं? उसने कहा–देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने की ईश्वर की सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी। **दसवां मन्तव्यः 'सृष्टि सकर्तृक'** है। इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि, सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का 'कर्त्ता' अवश्य है। **ग्यारहवां मन्तव्यः 'बन्ध'** सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है (अर्थात् बन्धन का कारण अविद्या है)। जो–जो पाप कर्म ईश्वर–भिन्नोपासना, अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसीलिये यह 'बन्ध' है, कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है। **यहां महर्षि दयानन्द यह बता रहे हैं कि यदि ईश्वर की यथार्थ उपासना से भिन्न पद्धति से उपासना करते हैं वा अज्ञान व अन्धविश्वास वाले कामों को करते हैं तो इसका परिणाम 'बन्ध' या बन्धन होने से जीवों को दुःख भोगना होता है। बारहवां मन्तव्यः 'मुक्ति'** अर्थात् सब दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना। मुक्ति का वर्णन महर्षि दयानन्द ने

अपने सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में भी विस्तार से लिखा है। वैदिक कर्मों को करने से जीवात्मा बन्धनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है जहां वह 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक ईश्वर के सान्निध्य में सुख व आनन्द का उपभोग करता है। इस अवधि में उसका दुःख–सुख रूप जन्म नहीं होता। यही जीवात्मा का चरम लक्ष्य है। प्रत्येक जीव की इससे पूर्व अनन्त बार मुक्ति व जन्म–मरण रूपी बन्धन हो चुके हैं। जितनी योनियां हम संसार में देखते हैं, कर्मानुसार हम इसमें कई–कई बार जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं परन्तु विस्मृति के कारण हमें ज्ञान नहीं है। अतः मुक्ति के लिए प्रयत्न करना सभी का कर्तव्य है। जो मुक्ति के लिए प्रयास नहीं करते, उन लोगों का मनुष्य जीवन सार्थक न होकर निरर्थक ही कहा जायेगा।

महर्षि दयानन्द ने स्वमन्तव्यों में 51 विषयों पर अपने प्रकाश डाला है। शेष मन्तव्य हैंः **मुक्ति के साधन, अर्थ, काम, वर्णाश्रम, राजा, प्रजा, न्यायकारी, देव, देवपूजा, शिक्षा, पुराण, तीर्थ, पुरूषार्थ प्रारब्ध से बड़ा, मनुष्य, संस्कार, यज्ञ, आर्य्य, दस्यु, आर्य्यावर्त्त, आचार्य, शिष्य, गुरू, पुरोहित, उपाध्याय, शिष्टाचार, आठ प्रमाण, आप्त, परीक्षा, परोपकार, स्वतन्त्र–परतन्त्र, स्वर्ग, नरक, जन्म, विवाह, नियोग, स्तुति, प्रार्थना, उपासना और सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना।** हम यहां तीर्थ, संस्कार और यज्ञ की महत्ता के कारण इनका भी महर्षि लिखित मन्तव्य प्रस्तुत कर रहे हैं। **'तीर्थ'** जिससे दुःखसागर से पार उतरें, कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरूषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं, उसी को तीर्थ समझता हूं, इतर जलस्थल (गंगा स्नान, जगन्नाथपुरी आदि) आदि को नहीं। **'संस्कार'** उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होंवे। वह निषेकादि (गर्भादानादि) श्मशानान्त सोलह प्रकार (संस्कारविधि निर्दिष्ट) का है। उसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये। **'यज्ञ'** उसको कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिन से वायु, सृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं। अपने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ग्रन्थ के अन्त में स्वामी दयानन्द जी ने महत्वपूर्ण वाक्य लिखे हैं–**'(मैंने) ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रकरण–प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है, अर्थात् जो–जो बात सबके सामने माननीय है उसको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरूद्ध झगड़े हैं, उन को मैं प्रसन्न (पसन्द) नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के, सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल (संसार वा विश्व भर में) में शीघ्र प्रवृत्त हो जाये जिससे सब लोग सहजता से धर्म्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।'**

हमने अपने जीवन में महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों को श्रेष्ठतम जानकर अपनाया है और हम निष्पक्ष भाव से यह चाहते हैं कि संसार के सभी मनुष्य इन मन्तव्यों को अपना कर अपना व दूसरों का कल्याण करें। हम आशा करते हैं कि पाठक महर्षि दयानन्द की इस लघु पुस्तिका 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' का अध्ययन कर इससे लाभ उठायेंगे। इतना और कह दें कि हमारा अनुमान है कि इस पुस्तक में लिखे मन्तव्य सर्वमान्य सिद्धान्त है जिसका सम्भवतः संसार में कोई विरोधी नहीं होगा परन्तु मतों के कठोर बन्धनों से लोग मुक्त नहीं हो पाते, यही मुख्य समस्या है।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121